शब्द शक्ति

डॉ0 अर्चना सिंह*

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

शब्द और अर्थ के समान (नित्यसम्बद्ध) एकरूप और संसार के माता–पिता पार्वती जी और शिवजी को, शब्द और अर्थ के सम्यक् ज्ञान तथा व्यवहार करने के लिए, मैं (कालिदास) प्रणाम करता हूँ।

अहं राष्ट्री सङ्मनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मां देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।[1]

मैं (वाग्देवता) धनों को एकत्र करने वाली हूँ, पूज्यों में प्रथम ज्ञानवती हूँ। अनेक स्थलों में स्थित तथा बहुतों में अपने को प्रवेश कराती हुई, (उस) मुझे देवों ने नाना स्थलों पर पृथक्–पृथक् स्थापित किया।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। ऋर्षाणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।[2]

अर्थात् लौकिक सज्जनों की वाणी तो अर्थ का अनुसरण करती है, परन्तु प्राचीन महर्षियों की वाणी के पीछे अर्थ (स्वयं) चलता है। इसी प्रकार के न जाने कितने ही मंत्र एवं श्लोक शब्द शक्ति को उद्घाटित करते हैं। उत्तररामचरित के प्रथम अंक में सूत्रधार तर्कपूर्ण रीति से अपने मत को नट के समक्ष रखता है–

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता। यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।।[3]

अर्थात् सभी प्रकार से (अर्थात् अवसरोचित) व्यवहार करना चाहिए। सर्वथा निर्दोषता कैसे (संभव) हो सकती है? मनुष्य जिस प्रकार स्त्रियों के पातिव्रत्य के संबन्ध में छिद्रान्वेषी होते हैं, उसी प्रकार वाणी (पद्य आदि) की निर्दोषता के विषय में भी छिद्रान्वेषी होते हैं। अनुमोदन, स्वीकृति, आलोचना, प्रशंसा सभी कथन पर आश्रित हैं। वक्ता, नेता, अधिवक्ता कब? कैसे? शब्दों के बल पर सामने बैठे व्यक्ति का दिल जीत लेते हैं, कहना कठिन है। बात में शक्ति है –

'बातहि हाथी पाइए, बातहिं हाथी पाव'।

यह उक्ति सार्थक है। यही सामान्य रूप से कहे जाने वाले शब्द शास्त्रीय भाषा में शब्द शक्ति संज्ञा से व्यवहित हैं।

संभवतः शब्द शक्ति पर प्रथम अध्ययन व्याकरण एवं निरुक्त में प्राप्त होता है। यास्क ने अपने पूर्ववर्ती आचार्य 'औदुम्बरायण' के मत का उल्लेख करते हुए लिखा है–

इन्द्रियनित्यं वचनम् औदुम्बरायणः। तत्र चतुष्ट्यं नोपपद्यते।
आयुगपद् उत्पन्नम् वा शब्दानां इतरेतरोपदेशः, शास्त्रकृतो योगश्च।

शब्द (जिह्वा) इन्द्रिय में ही नित्य है। इस प्रकार औदुम्बरायण का मत

***एसो0 प्रोफेसर, संस्कृत विभाग इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद**

है। यास्क के अनुसार, शब्द के व्याप्तिमान नित्य होने से उपर्युक्त मत का खण्डन हो जाता है। उनके अनुसार 'वक्ता' तथा 'श्रोता' के हृदय में सनातन भाव से व्याप्त रहने के कारण शब्द (अर्थ) 'अनित्यता' दोष से प्रभावित नहीं होते हैं। प्राकारान्तर से, यास्क स्फोट सिद्धान्त की मूल अवधारणा का प्रतिपादन नष्टधर्मा, वागिन्द्रिय धर्म, ध्वनि एवं वक्ता–श्रोता के हृदय में वर्तमान अखण्ड शब्द के माध्यम से करते हैं। आगे चलकर, पतंजलि ने व्यक्त होने वाले शब्द को ध्यान में रखकर पारिभाषित भी किया तथा 'स्फोट' सिद्धान्त की भी स्थापना की।

संस्कृत काव्यशास्त्र अपेक्षाकृत अन्य शास्त्रों से अर्वाचीन है। प्रो0 राजेन्द्र मिश्र के अनुसार, काव्य से ही 'शास्त्र' पैदा होता है। यह ध्रुव सत्य है। काव्यशास्त्र से काव्य नियमित एवं निर्देशित अवश्य होता है, परन्तु पैदा नहीं होता है। चूँकि वेद काव्य हैं अथवा यह कहें कि वेद में काव्य भी है–अतः वेद एवं काव्यशास्त्र के अन्तस्सम्बन्ध को नकारा नहीं जा सकता है।

वैयाकरणों का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान, जिसका भारतीय, काव्यशास्त्र में आगे उपयोग किया गया 'स्फोटवाद' का सिद्धान्त है। प्राचीन वैयाकरणों में स्फोटायन को स्फोट सिद्धान्त की प्रतिष्ठा का श्रेय दिया जाता है। इसका उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी है। पतंजलि शब्द को पारिभाषित करते हुए कहते हैं–**श्रोतोपलब्धबुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेनाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः। शब्द के चार वैशिष्ट्य हैं –**

वागिन्द्रिय द्वारा श्रवण किए जाते हैं, बुद्धि द्वारा ग्राह्य हैं, प्रयोग द्वारा जो अभिज्वलित (स्फुट एवं व्यक्त) तथा आकाश में व्याप्त हैं। वस्तुतः प्रयोग में 'अभिज्वलित होना' शब्द से स्फोट तत्त्व की ओर से संकेत है, जिसे पतंजलि उसका नित्य धर्म स्फोट बताते हैं–

स्फोटस् तावत्वाग् एवं ध्वनि कृतावृद्धिः। परम्परया परवर्ती साहित्य में अभिव्यक्त इस नित्य शब्द को दार्शनिकों ने शब्द ब्रह्म की संज्ञा दी है। काव्यशास्त्रीय शब्द शक्ति के विषय में तीन मत विशेष रूप से प्रचलित हैं– व्याकरण मत जो पदशास्त्र के रूप में इसका अध्ययन करता है। न्यायमत– जो प्रमाण रूप में इसका अध्ययन करता है तथा मीमांसा–वाक्य प्रमाण के रूप में इसका अध्ययन करता है।

वस्तुतः शब्द एवं अर्थ में अविनाभाव सम्बन्ध है। शब्द के बिना अर्थ की कल्पना तक नहीं की जा सकती। सार्थक शब्दों से ही साहित्य की सृष्टि संभव है। शब्द अपने अर्थ को कैसे प्रकट करता है? वैयाकरणों का यह गहन चिन्तन का विषय रहा है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि के अनुसार शब्द के भीतर अर्थ प्रकाशन की एक विलक्षण शक्ति निहित होती है :– अभिधा, लक्षणा, व्यंजना। काव्यशास्त्रकार आचार्य मम्मट ने इस सम्बन्ध में लिखा है–

स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यंजकस्त्रिधा।
वाच्यादयस्तदर्थाः स्युस्तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्।।[4]

अभिधा से वाच्य अपना मुख्यार्थ प्रकाशन करने वाला शब्द वाचक कहा जाता है। जैसे–गौः शब्द का निश्चित अर्थ है। इस प्रकार गौः शब्द गोत्व अर्थ का वाचक है।

लक्षणा शक्ति से लक्ष्य अर्थ को बताने वाला शब्द लाक्षणिक कहा जाता है। मुख्यार्थ से जुड़े अर्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं।

व्यंजना से व्यङ्ग्य अर्थ को प्रकाशित करने वाला शब्द व्यंजक कहा जाता है।

'मुख्यार्थ' का बोधन कराने वाला जो शब्द का व्यापार है उसको अभिधा' व्यापार कहते हैं। वाच्यार्थ मुख्यार्थ नाम से भी जाना जाता है। जैसेः– शरीर के सारे अवयवों में मुख सबसे प्रधान है और सबसे पहले दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार वाच्य, लक्ष्य तथा व्यङ्ग्य सब अर्थों में वाच्यार्थ सबसे व सर्वप्रथम उपस्थित होने वाला अर्थ है अतएव मुख के समान होने के कारण उसको मुख्यार्थ कहा जाता है। उस वाच्यार्थ या मुख्यार्थ का बोधन कराने वाला जो शब्द का व्यापार है उसको अभिधा का व्यापार कहते हैं। काव्यप्रकाशकार कहते हैं–

स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते।[5]

साहित्यदर्पणकार के अनुसार– तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाऽभिधा।[6]

अर्थात् संकेतित (मुख्य) अर्थ का बोधन नाम अभिधा है। यहाँ 'संकेतित' शब्द का अर्थ है 'मुख्य'। क्योंकि संकेत अभिधा का ही नाम है, अतः अभिधाज्ञानविषयीभूत अर्थ का बोधन कराने वाली शक्ति अभिधा है। व्याकरण कोशादि में प्रसिद्ध अर्थ मुख्य कहलाता है। लक्ष्य और व्यङ्ग्य अर्थों के पूर्व उपस्थित होना ही इसका मुख्यत्व है।

इस शक्ति को नैयायिक, मीमांसक, वैयाकरण भी आलंकारिकों की भाँति ही स्वीकार करते हैं। अभिधा का अपर नाम पदशक्ति भी है। पण्डितराज जगन्नाथ अभिधा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– अर्थ का शब्द के साथ और शब्द का अर्थ के साथ स्थित प्रत्यक्ष सम्बन्ध ही अभिधा है।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ का मत है कि, संकेतित अर्थ का बोध कराने वाली शक्ति अभिधा है। संकेतित का तात्पर्य है–सुनिश्चित अर्थ। इसी को अभिधेयार्थ, वाच्यार्थ अथवा मुख्यार्थ भी कहते हैं। जब किसी शब्द विशेष का अर्थ विशेष के प्रति निश्चित अथवा स्थायी संकेत हो तो उसे संकेतितार्थ कहते हैं। साहित्यदर्पणकार इसे अग्रिमा शब्द शक्ति कहते हैं।

अभिधीयते बोध्यतेऽर्थो यया साऽभिधा सारा लोकव्यवहार अभिधा से ही प्रवर्तित होता है।

'लक्षणा' शक्ति को नैयायिकों एवं मीमांसको ने स्थान दिया। अनेक वैदिक वाक्य हैं जिनमें निहित अर्थाक्षेप को जिस शक्ति द्वारा स्वीकार किया जा सकता है, वह लक्षणा है। मीमांसक इसे गौणी रीति के नाम से पुकारते हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने कहा है–

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रुढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणाऽऽरोपिता क्रिया।।[7]

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ प्रायः मम्मट की ही परिभाषा को दुहराते हैं –

मुख्यार्थबाधे तद्युक्ते ययान्योर्थः प्रतीयते।
रुढेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता।।[8]

व्यंजना शब्द मूलतः अञ्ज् धातु से बना है, जिसका अर्थ है, स्फुट होना, प्रकट होना, शोभित होना आदि। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार, इसलिए अभिधा, तात्पर्य एवं लक्षणा से भिन्न चतुर्थ व्यापार ध्वनन, द्योतन, व्यंजन, प्रत्यायन, अवगमन आदि नामों में से किसी एक को स्वीकार करना चाहिए। आचार्य आनन्दवर्धन ने व्यंजना शब्द के अनेक रूपों यथा–व्यंग्य, अभिव्यंग्य, व्यंग्यत्व, व्यंजना आदि का अनेकशः प्रयोग ध्वन्यालोक में किया है। आचार्य मम्मट के अनुसार–

यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।
फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यंजनान्नापरा क्रिया।
नाभिधा समयाभावात् हेत्वभावान्न लक्षणा।।[9]

वस्तुतः लक्षणा की ही कुक्षि से व्यंजना वृत्ति का जन्म हुआ।

शब्द की व्यंजना शक्ति का विरोध करने वाले मीमांसकों का खण्डन करने के बाद मम्मट ने व्यंजना शक्ति को अलग शब्दवृत्ति मानने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। जो शाब्दी तथा आर्थी द्विविध है। शाब्दी व्यंजना भी लक्षणामूला तथा अभिधामूला द्विविध है। लक्षणामूला का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अभिधामूला व्यंजना को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं–

अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।
संयोगाद्येरवाच्यार्थधीकृद्व्यापृतिरञ्जनम्।।[10]

अर्थात् संयोग, विप्रयोग आदि के द्वारा अनेकार्थक शब्द की वाचकता नियंत्रित हो जाने पर उससे भिन्न अवाच्यार्थ की प्रतीति कराने वाला शब्द का व्यापार व्यंजना व्यापार या शक्ति है। वह अन्यार्थ अभिधा से नहीं निकल सकता क्योंकि वह किसी एक अर्थ में सीमित हो गई। मुख्यार्थबाध आदि न होने से लक्षणा भी नहीं हो सकती है।

इस प्रकार शाब्दी व्यंजना की अभिधामूला तथा लक्षणामूला दोनों भेदों को बताकर मम्मट कहते हैं कि उस व्यंजनाव्यापार से युक्त शब्द को व्यंजक शब्द कहते हैं और इस रीति से अभिधाशक्ति से युक्त शब्द वाचक, लक्षणा शक्ति से युक्त शब्द लक्षक तथा व्यंजना शक्ति से युक्त शब्द को व्यंजक शब्द कहते हैं।

सन्दर्भ

1. वाक्सूक्त, 3
2. उत्तररामचरितम्, 1/10
3. उत्तररामचरितम्, 1/5
4. काव्यप्रकाश, 2/6
5. काव्यप्रकाश, 2/8
6. साहित्यदर्पण, 2/4
7. काव्यप्रकाश, 2/9
8. साहित्यदर्पण, 2/5
9. काव्यप्रकाश, 2/14–15
10. काव्यप्रकाश, 2/29